मंथन क्रमांक 76

भय का व्यापार

सारी दुनियां मे व्यापार का महत्व बढता जा रहा है । दुनियां की राजनीति मे पूंजीवाद सबसे आगे बढ रहा है। यहूदी व्यापार को माध्यम बनाकर लगातार अपनी बढत बनाए हुए हैं। व्यापार की ताकत पर ही अंग्रेजो ने भारत पर इतने लम्बे समय तक शासन किया । व्यापार अनेक राजनैतिक तथा सामाजिक प्रणालियो मे शीर्ष स्थान रख रहा है।

पूराने समय से ही व्यापार के अनेक तरीके प्रचलित रहे है । इन तरीको मे ही एक भय का व्यापार भी शामिल रहा है। ईश्वर या सत्ता का भय दिखाकर हजारो वर्षो से कुछ लोग अपनी दुकानदारी चलाते रहे है। आज भी ईश्वर के भय के नाम पर आशाराम, राम रहीम जैसे चालाक लोग करोडो अरबो का धन इकठठा करते रहे है। भूत–प्रेत, तंत्र–मंत्र भी ऐसा ही भय का व्यापार माना जाता है। अस्तित्वहीन धारणाओ को प्रचारित करके इन तंत्र मंत्रो के आधार पर अनेक लोग फलते फूलते रहे है। आजकल तो एक वास्तु शास्त्र भी बहुत प्रभावी होता जा रहा है। इस तरह भय के व्यापार का पुराना इतिहास रहा है जो वर्तमान मे वैज्ञानिक काल खंड मे भी लगभग उसी तरह प्रभावी है ।

वर्तमान समय मे एक नये प्रकार के भय का व्यापार शुरू हो गया है। पर्यावरण के नाम पर सम्पूर्ण भारत मे एक अदृश्य भय का वातावरण बना दिय गया हैं। बंदना शिवा सरीखे सैकडो लोग इसी व्यापार के माध्यम से अपना जीवन यापन कर रहे है। जिन्होने जीवन मे कभी एक भी पेड नही लगाया वे भी सडक चौडी करते समय कुछ हरे भरे पेडो की कटाई के विरोध मे खडे दिखते है। स्वाभाविक है कि यही उनका रोजगार है। मै देखता हूॅ कि हमारे शहर के पास तातापानी सडक किनारे एक छोटा सा पेड आवागमन मे बहुत बाधक बना हुआ है । उस पेड के कारण कई एक्सीडेन्ट भी हो चुके है। किन्तु वह पेड कानूनी प्रक्रिया लम्बी होने के कारण कट नही सकता और यदि कट गया तो अनेक पेशेवर पर्यावरण वादी छाती पीटना शुरू कर देगे। आजकल तो बडे बडे शहरो मे पर्यावरण के नाम पर बीच सडक मे पेड–पौधे लगाने को प्रोत्साहित किया जा रहा है। कुछ जगहो पर तो लगे हुए पेड हटाने के नाम पर इतना बडा नाटक खडा किया जाता है कि हंसी आती है। पेड को जड से उखाडकर मशीनो के द्वारा कही दुसरी जगह ले जाकर इस तरह लगाया जाता है जैसे कि कोई जीवित प्राणी हो। पर्यावरण के नाम पर पूरे देश मे कुछ निकम्मो का एक ऐसा गिरोह बना हुआ है, जिनकी रोजी रोटा का यही मुख्य आधार है।

जल अभाव भी एक ऐसा ही माध्यम बना हुआ है। राजेन्द्र सिंह सहित अनेक लोग ऐसा हौवा खडा करते है जिनके आधार पर जल अभाव ही विश्व युद्ध का कारण बनेगा। यह बात लगातार फैलाई जाती है । इसी तरह की काल्पनिक बात इतनी तेजी से फैलाई जाती है कि बहुत लोग इस बात को दूहराना शूरू कर देते है। कितनी बचकाना बात है कि जल अभाव को दुनियां की सबसे बडी समस्या प्रचारित किया जाये, जबकि ऐसी कोई समस्या आंशिक हो सकती है व्यापक नही। एक तरफ ऐसे लोग जल अभाव की बात करते है तथा पानी बचाव आंदोलन चलाते है तो इन्ही लोगो मे से दूसरी टीम पर्यावरण सूरक्षा के नाम पर हवाई जल सिचन अथवा बडे शहरो मे सडको पर पानी छीटने की भी मांग करते है। बडे बडे शहरो मे बीच सडक पर पौधा रोपण करके उनकी सिचाई करना भी कुछ लोगो के लिये आवश्यक कार्य है तो जल अभाव का वातावरण बनाकर पानी बचाव आंदोलन भी कुछ लोगो का रोजगार बन गया है।

हम देखते है कि आमतौर पर कभी वातावरण गरम होने के कारण भयंकर गर्मी के खतरे का समाज मे भय फैलाया जाता है तो कभी हिमयुग आने की कल्पना से समाज को भयभीत किया जाता है। दोनो ही बाते प्रतिवर्ष किसी न किसी रूप मे बहुत वीभत्स स्वरूप देकर समाज मे प्रचलित की जाती है। कभी समझ मे नही आया कि दोनो मे से क्या सही है, और यह खतरा तात्कालिक स्वरूप मे कितना बडा है। यह भी समझ मे नही आया कि इस प्रकार के खतरो को सामान्य समाज मे प्रचारित करना कितना आवश्यक है और क्या समाधान करेगा। स्पष्ट दिखता है कि इस प्रकार के मौसमी वातावरण के काल्पनिक भय विस्तार मे भी कुछ लोगो का रोजगार निहित होता है।

कुछ लोग ग्रीन हाउस गैस का खतरा भी तिल का ताड बना कर प्रस्तुत करते रहते है तो कुछ लोग डीजल पेट्रोल समाप्त होने का खतरा भी लगातार बताते रहते है। कुछ लोग बढती आबादी को भी बहुत बडा संकट बताकर प्रचारित करते रहते है। वे हर मामले मे बढती आबादी को दोष देते है । सामान्य व्यक्ति इस प्रकार के भय से प्रभावित तो होता रहता है किन्तु कुछ समाधान नही कर पाता । मानवाधिकार के नाम पर भी ऐसे अनेक कार्यक्रम चलते रहते है । तीस्ता शीतलवाड का नाम आपने सुना होगा । गुजरात की बडी प्रमुख मानवाधिकार वादी की पोल खुली तो पता चला कि ये सबलोग भय के व्यापार के अतिरिक्त और कोई धंधा नही करते । ऐसे लोगो की संख्या भारत मे हजारो के रूप मे है जो किसी न किसी नाम पर समाज मे काल्पनिक भय का वातावरण बनाकर स्वयं को उसका मुखिया बना लेते है और जीवन भर उनकी दुकानदारी आराम से चलती रहती है।

मै मानता हूॅ कि ऐसी समस्याए आंशिक रूप से होती भी है किन्तु ऐसी समस्याओ का तात्कालिक प्रभाव बहुत नाम मात्र का होता है और हजारो वर्षो के बाद ही उनका व्यापक प्रभाव संभावित है । दूसरी बात यह भी है कि उन समस्याओ के

समाधान मे आंम लोग कोई भूमिका अदा नही कर सकते क्योकि ये बहुत उचे लेबल का मामला होता है । यहां तक कि इन समस्याओ के विस्तार देने वाले विकसित राष्ट्र ही भारत जैसे देश मे अपने एजेन्डो को सक्रिय करके इन समस्याओ को बढा चढाकर प्रचारित कराते है । यदि ठीक से खोजबीन किया जाय तो पर्यावरण, मानवाधिकार, जल अभाव, गर्मी सर्दी, मौसम, ग्रीन हाउस जैसी अनेक समस्याए विकसित राष्ट्र पैदा करते है। साथ ही इन विकसित राष्ट्रो का एजेन्डा इन्ही विकसित राष्टो के एजेन्ट गुप्त रूप से समाज सेवी संस्थाओ का बोर्ड लगाकर सामाजिक वातावरण मे भय का जहर घोलते है। ऐसे निकम्मे लोगो की फौज छोटे छोटे शहरो तक स्थापित हो चुकी है। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के अनावश्यक भय के वातावरण से समाज को मुक्त कराया जाय। साथ ही ऐसे पेशेवर लोगो की भी पोल खोली जाय जो अनावश्यक भय का वातावरण बनाकर अपनी रोजी रोटी चलाते रहते है।

मंथन क्रमांक –77

क्या न्यायपालिका सर्वोच्च है।

समाज में व्यक्ति एक मूल और सम्प्रभुता सम्पन्न स्वतंत्र इकाई मानी जाती है। व्यक्ति की स्वतंत्रता पर तब तक कोई अन्य कोई अंकुश नहीं लगा सकता जब तक उसने किसी अन्य की स्वतंत्रता में बाधा न पहुंचाई हो। समाज को भी ऐसा अंकुश लगाने का अधिकार नहीं। किन्तु जब कोई अन्य व्यक्ति या व्यक्ति समूह किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बाधक होता है तब उसकी स्वतंत्रता की रक्षा करने का दायित्व समाज का है। समाज स्वयं में एक अमूर्त इकाई होने से वह प्रत्यक्ष रूप से ऐसी सुरक्षा की गारंटी नहीं दे सकता। इसलिये समाज ऐसी सुरक्षा की गारंटी के लिये एक तंत्र की नियुक्ति करता है जिसे सरकार कहते है। यह तंत्र बहुत शक्तिशाली होता है क्योंकि उसके पास सेना, पुलिस, वित्त सहित अनेक अधिकार होते है। तंत्र उच्श्रृंखल न हो जाये इसलिये तंत्र के अधिकारों की सीमाएं निर्धारित करने के लिये समाज एक संविधान का निर्माण करता है। तंत्र स्वेच्छा से उस संविधान में कोई फेर बदल नहीं कर सकता। तंत्र स्वयं ही व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक न बन जाये अथवा तानाशाह न हो जाये इसलिये समाज संवैधानिक रूप से तंत्र की शक्तियों को तीन भागों में बॉटकर रखता है। इन तीन भागों को विधायिका, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका के नाम से जाना जाता है। संविधान के अंतर्गत तीनों के अधिकार दायित्व तथा सीमाएं बराबर होती है। तीनों ही एक दूसरे के सहायक भी होते है और नियंत्रक भी। यदि कोई एक अपनी सीमाएं तोडने लगे तब अन्य दो मिलकर उस पर अंकुश लगाते है । यदि तीनों मिलकर सीमाएं तोडने लगे तब संविधान उसमे हस्तक्षेप करता है, अन्यथा नहीं।

तीनो के कार्य क्षेत्र अलग–अलग है। विधायिका न्याय अन्याय को परिभाषित करती है किन्तु वह किसी इकाई के न्याय अन्याय का विश्लेषण नहीं कर सकती। न्यायपालिका किसी इकाई के न्याय–अन्याय के मामले में विश्लेषण करके घोषित करती है, किन्तु क्रियान्वित नहीं कर सकती। विधायिका द्वारा परिभाषित और न्यायपालिका द्वारा घोषित न्याय अन्याय का क्रियान्वयन कार्यपालिका करती है। इस तरह तीनों के बीच स्पष्ट कार्य विभाजन है। साथ ही न्यायपालिका को एक विशेष अधिकार प्राप्त है कि वह प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में संविधान अथवा तंत्र द्वारा भी बनायी गई किसी बाधा से व्यक्ति को सुरक्षा दे सकता है। इस तरह न्यायपालिका संविधान से व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा का भी दायित्व पूरी करती है। यदि संविधान का कोई संशोधन समाज या तंत्र के द्वारा इस प्रकार किया जाता है कि वह व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारो का उल्लंघन करता है तो न्यायपालिका पूरे विश्व समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए उक्त संशोधन को रद्द कर सकती है। इसके अतिरिक्त न्यायपालिका व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा मे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि विधायिका कोई ऐसा कानून बनाती है जो संविधान के विरूद्ध हो तो न्यायालय उस कानून को रद्द कर सकता है। यदि कार्यपालिका किसी कानून के विरूद्ध कोई आदेश देती है तो न्यायपालिका ऐसे आदेश को भी रद्द कर सकती है। यदि कार्यपालिका का कोई व्यक्ति किसी कार्यपालिक आदेश के विरूद्ध क्रिया करता है तो न्यायपालिका ऐसी क्रिया को भी रोक सकती है । इस तरह न्यायपालिका को कुछ विशेष अधिकार दिखते है किन्तु वास्तविकता में विशेष अधिकार है नहीं, क्योंकि न्यायपालिका कोई विधायी या कार्यपालिक आदेश नहीं दे सकती । वह तो किसी अधिकार के अतिक्रमण को रोक देने तक सीमित रहती है। अप्रत्यक्ष रूप से भी उसे वीटों पावर अर्थात निशेषाधिकार तो प्राप्त है किन्तु विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है।

स्वतंत्रता के बाद विधायिका तत्काल ही उच्श्रृंखल हो गई, क्योंकि उसने संविधान संशोधन का विशेषाधिकार अपने पास सुरक्षित कर लिया था। भारतीय लोकतंत्र में यह विशेषाधिकार समाज के पास होता है और विदेशी लोकतंत्र में आंशिक रूप से समाज की भूमिका होती है तथा साथ ही तंत्र की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। स्वतंत्रता के समय संविधान बनाने वालो ने भारतीय संविधान बनाते समय बुरी नीयत से संविधान संशोधन के अधिकार से समाज को पूरी तरह अलग कर दिया और न्यायपालिका तथा कार्यपालिका को भी किनारे करते हुए सारे अधिकार अपने पास समेट लिये। अप्रत्यक्ष रूप से विधायिका तानाशाह बन गई और उसने स्वतंत्रता के प्रारंभ से ही इस अधिकार का खुला दुरूपयोग किया। पंडित नेहरू तानाशाही प्रवृत्ति के व्यक्ति थे जो लोकतंत्र का

मुखौटा पहने हुए थे। उन्होंने सन् 50 में ही न्यायपालिका के पंख कतरने शुरू कर दिये जिसे बाद मे उनकी तानाशाह बेटी इंन्दिरा ने राष्ट्रपति अर्थात कार्यपालिका के पंख कतरकर पूरा किया। इस तरह सारी शक्ति विधायिका के पास आ गई। इस शक्ति के एकत्रीकरण के विरूद्ध कार्यपालिका आज तक उसी स्थिति में है किन्तु न्यायपालिका ने संविधान के विरूद्ध जाकर केशवानंद भारती प्रकरण में अपनी स्वतंत्रता स्थापित करने की शुरूआत की । जब इंदिरा गांधी के बाद विधायिका का एक क्षत्र शासन कमजोर होने लगा तब न्यायपाकिा और मजबूत होने लगी। धीरे–धीरे विधायिका इतनी कमजोर हो गई कि न्यायपालिका के मन मे भी सर्वोच्चता की भूख पैदा हुई और 1995 के आस पास उसने संविधान की मनमानी व्याख्या करके अपनी तानाशाही की शुरूआत कर दी। कॉलेजियम सिस्टम एक ऐसी ही शुरूआत थी। बदनाम विधायिका और कमजोर कार्यपालिका मुकाबला नहीं कर सकी और न्यायपालिका अपनी सर्वोच्चता सिद्ध करती रही । स्थिति यहां तक आई कि विधायिका की तुलना मे न्यायपालिका के भ्रष्टाचार की अधिक चर्चा होने लगी । किन्तु स्वाभाविक है कि भ्रष्ट दुकानदार किसी भी संभावित बदनाम से नहीं डरता। न्यायपालिका भी ऐसे ही दुकानदार के समान सारी बदनामी झेलते हुए भी ढीठ बनी हुई है। अब परिस्थितियां बदली और नरेन्द्र मोदी ने आने के बाद न्यायपालिका को अपनी औकात में रहने का सबक सिखाना शुरू कर दिया। अब फिर विधायिका अपना रंग दिखा सकती है

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि विधायिका और न्यायपालिका मे से क्या कोई सर्वोच्च है और क्या कोई सर्वोच्च हो सकता है लोकतंत्र मे लोक सर्वोच्च होता है, तंत्र नहीं क्योंकि लोक नियुक्त करता है और तंत्र नियुक्त होता है । सिद्धान्त रूप से इन सब में किसी को सर्वोच्च नहीं होना चाहिये और यदि तीनो एक साथ जुट जाये तब भी वे सर्वोच्च नही हो सकते क्योकि संविधान इन सबसे उपर होता है। किन्तु व्यावहारिक धरातल पर इन तीनों नें एकजुट होकर भारतीय संविधान पर अपना नियंत्रण कर लिया और उस आधार पर इन नकली समूहों ने अपने को सरकार कह दिया। संविधान पर नियंत्रण जिसका होगा वही सर्वोच्च होगा । क्योकि लोकतंत्र और तानाशाही मे सिर्फ एक ही फर्क होता है कि लोकतंत्र मे संविधान का शासन होता है तो तानाशाही मे शासन का संविधान । स्पष्ट है कि वर्तमान समय मे लोकतंत्र के नाम पर तानाशाही चल रही है। क्योकि संविधान तंत्र के नियंत्रण मे है । यदि संविधान पर ही तंत्र का नियंत्रण समाप्त होकर लोक का नियंत्रण हो जाये तो सर्वोच्चता का विवाद सदा के लिये समाप्त हो सकता है। सिद्धान्त रूप से तो यही घोषित है कि लोक ही सर्वोच्च है किन्तु व्यवहारिक धरातल पर न्यायपालिका और विधायिका ने व्यक्ति को अक्षम अयोग्य घोषित करके स्वयं को संरक्षक बता दिया है और संविधान पर अपना नियंत्रण कर लिया है। अच्छा होगा कि इस विवाद को सदा के लिये समाप्त कर दे। इस उद्देश्य से संविधान संसोधन का पूरा अधिकार इनके हाथ से बाहर कर दिया जाना चाहिये। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी ।

मंथन क्रमांक–78

अमेरिका हमारा मित्र, प्रतिस्पर्धी, विरोधी या शत्रु

किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति से व्यवहार आठ स्थितियों से निर्धारित होता है। 1. शत्रु 2. विरोधी 3. आलोचक 4. समीक्षक 5. प्रशंसक 6. समर्थक 7. सहयोगी 8. सहभागी। ये भूमिकाएं बिल्कुल अलग–अलग होती हैं। शत्रु के साथ व्यवहार करते समय हम किसी भी प्रकार के असत्य और छल कपट का सहारा ले सकते है। शत्रु के साथ व्यवहार में कोई नैतिकता हमारे बीच बाधक नहीं होती। विरोधी के साथ व्यवहार में हम झूठ नहीं बोल सकते भले ही हम सत्य को छिपा ले या पूरी तरह तोड मरोडकर प्रस्तुत कर दे। विरोधी के विरूद्ध हम छल–कपट का प्रयोग नहीं कर सकते। यदि कोई व्यक्ति सिर्फ आलोचक मात्र है, किन्तु विरोधी नहीं तो हमें विरोधी की तुलना में उसके प्रति और अच्छा मार्ग अपनाना चाहिये अर्थात उसकी कमजोरियों को प्रकट करके अच्छाइयों को आंशिक रूप से छिपा सकते है पूरी तरह नही। यदि कोई तटस्थ समीक्षक मात्र है तो हमें भी पूरी तरह निष्पक्ष रहना चाहिये। ऐसे व्यक्ति की अच्छाई बुराई में से किसी तरफ झुकने की जरूरत नहीं। यदि हम किसी के प्रशंसक है तो हम उसके अच्छे कार्यो को अधिक और गलतियों को कम करके बता सकते है। यदि हम किसी के समर्थक है तो इसकी गलतियों को छिपाकर सिर्फ अच्छाइयों का प्रचार कर सकते है। यदि हम किसी के सहयोगी है तो हम उसके हर अच्छे काम में सहयोग कर सकते है और गलत कार्यो से चुप रह सकते है। किन्तु यदि हम किसी के किसी काम में सहभागी है तो हम उसके उस अच्छे या बुरे काम के सभी परिणामों से संबद्ध रहना होगा। हम अपने सहभागी की मदद से लिये असत्य का भी सहारा ले सकते है।

हमारी दो भूमिकायें हैं। 1. धार्मिक 2. राष्ट्रीय। सामाजिक भूमिका पर हम कोई चर्चा नहीं कर रहे। अमेरिका एक इसाई बहुल देश है। इसाइयों के अतिरिक्त हमें मुसलमानों से भी सम्पर्क रहता है तथा नास्तिक अर्थात साम्यवादियों से भी। यदि हम इसाइयों मुसलमानों तथा साम्यवादियों के बीच तुलना करे तो साम्यवादी सबसे अधिक खतरनाक होते है तो इसाई सबसे कम। साम्यवादी लगभग पूरी तरह भावना शून्य तथा बुद्धि प्रधान होते है तो मुसलमान पूरी तरह भावना प्रधान। हर साम्यवादी व्यक्तिगत आधार पर भी खतरनाक होता है जबकि मुसलमान स्वयं खतरनाक नहीं होता क्योंकि हर साम्यवादी संचालक होता है और आम तौर पर मुसलमान संचालित। साथ ही यह भी सत्य है कि आम तौर पर मुसलमानों का बाहरी लोग ऐसा ब्रेन वाश कर देते है कि वह विचार

शून्य होकर उनका अनुकरण करने लग जाता है । इस तरह कुल मिलाकर मुसलमान बुद्धि के मामले में कमजोर होने के कारण अन्य कट्टरपंथी धर्म गुरूओं या साम्यवादियों की लय ताल पर सक्रिय होकर अधिक खतरनाक बन जाता है। इस मामले में इसाइयों का व्यवहार अन्य दो की तुलना में बहुत अच्छा है। साम्यवादी साम, दाम, दंड, भेद का सहारा लेकर अपना विस्तार करते है तो मुसलमान सिर्फ दंड और भेद के बल पर। इसाई साम, दाम और भेद का प्रयोग करते है। दंड का नहीं करते । इसलिये हम उन्हें कम खतरनाक मानते है। मुस्लिम शासन और इसाई शासन की भारत मे तुलना करे तो दोनो का अंतर स्पष्ट हो जाता है। आज भी भारत में अपनी जनसंख्या बढाने में मुसलमानों और इसाईयों का तुलनात्मक फर्क देखा जा सकता है

हम राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अमेरिका की समीक्षा करे। अमेरिका एक लोकतांत्रिक देश है तो अधिकांश साम्यवादी तथा मुस्लिम देश लोकतंत्र और तानाशाही के बीच नाटक करते रहते है। लोकतांत्रिक व्यवस्था उन्हें पसंद नहीं तो तानाशाही शब्द भी उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं। हाल में ही चीन के राष्ट्रपति ने संविधान संशोधन के लिये जनमत संग्रह का नाटक कर दिखाया। रूस भी ऐसा कोई न कोई नाटक करेगा ही। मुस्लिम देशो में भी जनमत संग्रह का नाटक चलता रहता है। किसी मुस्लिम तानाशाह की उसकी हत्या के बाद बहुत दुर्गति होती है और हत्या के पूर्व उसे 95 प्रतिशत तक वोट मिलते है। नकली लोकतंत्र का ऐसा नमूना अधिकांश मुस्लिम और साम्यवादी देशों में देखने को मिल सकता है। इन सबकी तुलना में अमेरिका या अन्य सहयोगी देशों का लोकतंत्र बहुत अच्छा है। अमेरिका आदि देश अन्य देशों को कूटनीतिक या आर्थिक तरीके से जाल मे फंसाकर उन्हे अपने पक्ष में रहने को मजबूर कर देते है जबकि मुस्लिम और साम्यवादी देश सैनिक ताकत को ही अपनी कूटनीति समझते है। आज तक अमेरिका ने किसी भी देश पर सैनिक नियंत्रण नहीं किया जबकि रूस और चीन ने कही भी अपने प्रयासो को नहीं छोडा। हम कह सकते है कि भारत को अमेरिका से कूटनीतिक राजनैतिक अथवा आर्थिक गुलामी का तो खतरा है किन्तु सैनिक गुलामी का नहीं जबकि भारत को चीन या पाकिस्तान से आर्थिक कुटनैतिक या राजनैतिक गुलामी का कोई खतरा नहीं है। यदि है तो सिर्फ सैनिक गुलामी का।

हम जानते है कि अमेरिका एक पूंजीवादी देश है और चीन अर्ध साम्यवादी । भारत भी एक लोकतांत्रिक और पूंजीवादी देश है। भारत अपनी सुरक्षा तक सीमित रहता है। आक्रमण से विस्तार के लिये तो कभी सोचा ही नहीं गया। इस तरह पूंजीवाद और लोकतंत्र के मामले में भारत और अमेरिका स्वाभाविक मित्र होने के कारण बहुत निकटता है तो चीन, रूस अथवा मुस्लिम देशों से भारत की बहुत दूरी है।

हम इस नतीजे पर पहुंच रहे है कि लोकतांत्रिक पूंजीवादी देश अमेरिका सैद्धांतिक रूप से हमारा विरोधी है ही नहीं। व्यावहारिक धरातल पर जब भारत सरकार चीन ओर रूस की तरफ झुकी हुई थी तब मजबूर होकर अमेरिका को भारत के विरूद्ध पाकिस्तान को खडा करना पडता था । अब भारत अमेरिका के साथ तालमेल बिठा रहा है तब स्वाभाविक है कि अमेरिका भारत का विरोधी देश न होकर उसी तरह एक प्रतिस्पर्धी देश के रूप में स्थापित हो रहा है जिस तरह ब्रिटेन, फ्रांस, कनाडा या जर्मनी जापान। मोदी के आने के पूर्व भारत कभी भी अमेरिका के साथ इतना विश्वसनीय नहीं रहा जितना अब है।

यदि हम विरोधी और शत्रु के बीच खोज करे तो चीन हमारा विरोधी देश हो सकता है किन्तु शत्रु नहीं। विरोधी और शत्रु में बहुत अंतर होता है। चीन के साथ भारत का सिर्फ सीमा विवाद है किन्तु सांस्कृतिक रूप से कोई टकराव नहीं है। पाकिस्तान के साथ भारत का कोई सीमा विवाद नहीं है बल्कि सांस्कृतिक विवाद हैं जिसमें पाकिस्तान कट्टरपंथी मुसलमानों के दबाव में भारत से टकराता रहता है और भारत अपनी सुरक्षा के लिये मजबूर है। कश्मीर विवाद कोई भी सीमा विवाद नहीं है बल्कि आम मुसलमानों की विस्तारवादी नीति के कारण जिस तरह सारी दुनियां के सभी देशों में बिना बात का झगडा पैदा किया जाता है, कश्मीर विवाद भी उसी की एक कडी है। मुस्लिम देशो को तो सबके साथ लडना ही है। यदि कोई अन्य देश हो तो उससे लडेगे न हो तो अपनो से लडेंगे। यहां तक कि आमतौर पर मुसलमान स्वप्न मे भी किसी न किसी से अवश्य लडता होगा। जहॉ शक्तिशाली होते है वहॉ किसी को न्याय नहीं देते और कमजोर होते है तो इन्हें सबसे न्याय चाहिये। ऐसी परिस्थिति मे भारत के लिये पाकिस्तान की भूमिका विरोधी की न होकर शत्रु की है क्योंकि पाकिस्तान तो न स्वयं संचालित है न लोकतांत्रिक है और न ही पूंजीवादी है बल्कि वह तो कट्टरपंथी इस्लामिक देश है जिससे भारत की शत्रुता स्वाभाविक है।

भारत को हमेशा अमेरिका को प्रतिस्पर्धी चीन को विरोधी और पाकिस्तान को शत्रु देश मानना चाहिये । वर्तमान भारत सरकार अन्य मामलो मे तो लगभग ऐसी नीति पर चल रही है। किन्तु पाकिस्तान को शत्रु देश न मानकर अब तक विरोधी ही मान रही हैं जो पूरी तरह गलत है। भारत के विपक्षी दलो की तो कभी कोई नीति रही ही नही । वे तो सत्ता का विरोध करना ही एकमात्र कार्य मानते रहे है। जब भाजपा विरोध मे थी तो उसकी भी नीतियां ऐसी ही थी जैसी आज कांग्रेस या अन्य विपक्षी दलो की है। इस मामले मे थोडा सा नीतिश कुमार तथा अखिलेश यादव को अधिक समझदार माना जा सकता है तो अरविन्द केजरीवाल को सबसे कम । फिर भी प्रतिस्पर्धी विरोधी और शत्रु के बीच का फर्क संघ परिवार भी कभी नही कर पाता। संघ परिवार के लोग भी कभी भी अमेरिका का अंध विरोध करने लग जाते है। ये लोग कभी कभी चीन को भी शत्रु की श्रेणी मे डाल देते है जो इनकी नासमझी का प्रतीक है। पाकिस्तान और चीन की मित्रता हमारे लिये सोच समझकर नीति बनाने का अवसर है। हमे चीन के साथ शत्रुता का व्यवहार नहीं बनाना चाहिये भले ही हम सतर्क रहे। साथ ही बिना जरूरत अमेरिका आदि लोकतांत्रिक

देशों की सिर्फ इसलिये आलोचना नहीं करनी चाहिये कि वे इसाई देश है। इसाई भारत में हिन्दूओं के भी प्रतिस्पर्धी है। प्रतिस्पर्धा विरोध और शत्रुता के बीच स्पष्ट विभाजन कि सीमा रेखाएं बनी हुई है। अब नासमझ संघ परिवार इन सीमा रेखाओ को बिना सोचे समझे मनमाने तरीके से शत्रुता और मित्रता का निर्धारण करने लगे तो हमे इस संबंध मे बहुत सोच समझकर चलना चाहिये। मेरा यह मत है कि भारत को लोकतांत्रित पूंजीवादी देश के साथ मैंत्रीपूर्ण प्रतिस्पर्धा की नीति पर आगे बढना चाहिये और पाकिस्तान को एक मात्र शत्रु मानकर हमे अपनी सारी नीतियां बनानी चाहिये।

सामयिकी

त्रिपुरा मे साम्यवाद के पतन के बाद प्रसन्नता व्यक्त की गई। कुछ अतिरेक भी हुआ। साम्यवादी शासन में स्थापित लेनिन की मूर्ति तोड दी गई।

लेनिन एक अत्याचारी शासक था जिसने साम्यवाद सरीखी अत्याचारी व्यवस्था का सहारा लेकर अनेक ऐसे काम किये जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि लेनिन की मूर्ति दुनियां के किसी भी भू भाग मे नही रहनी चाहिये और यदि है तो उसे टूटना ही चाहिये। मै तो इस मत का हूॅ कि ऐसे अत्याचारियो को रावण के समान प्रतिवर्ष अपमानित करना चाहिये। मेरे विचार से लेनिन की मूर्ति का टूटना बिल्कुल उचित है। किन्तु त्रिपुरा मे लेनिन की मूर्ति विधिवत स्थापित थी और उसे कानूनी प्रक्रिया के अंतर्गत ही टूटना चाहिये था, भीड तंत्र के अंतर्गत नही । यदि सत्ता बदलते ही भीड तंत्र का स्वरूप भी बदल जायेगा तो साम्यवाद और लोकतंत्र के बीच अंतर ही क्या रह जायेगा। साम्यवादी सरकार के समय उसकी दादागिरी का मुकाबला करते समय संघ परिवार ने जो सीमाएं तोडी उसके लिये वे बधाई के पात्र है। किन्तु मरे हुए साम्यवाद को अब भी मारने के अनैतिक प्रयत्न कायरता मानी जायगी और ऐसी घटनाए विपरीत सहानुभूति की दिशा मे बढकर नुकसान करती है। मूर्ति तोडने की अपेक्षा मूर्ति टूटनी चाहिये इस विषय पर चर्चा या आंदोलन होना अधिक अच्छा होता । ऐसी बहस के बहाने साम्यवाद और लेनिन लम्बे समय तक चर्चा मे बने रहते ।

सामयिकी

उत्तर प्रदेश के उपचुनावो मे गोरखपुर और फुलपुर मे स पा की जीत अप्रत्याशित थी। उतनी ही अप्रत्याशित जितनी विधानसभा चुनावों मे सपा की करारी हार थी। उस समय उनकी हार का वैसा अनुमान नही था और इस समय उनकी जीत का ऐसा अनुमान किसी को नही था। संभवतः चुनाव लडने वालों को भी नही।

यह स्पष्ट है कि इन चुनावों मे सपा की जीत नही हुई बल्कि भाजपा की हार हुई है।यह हार मोदी जी की हार है या योगी जी की अथवा जीत के प्रति अति आत्मविश्वास की यह अभी नही कहा जा सकता। चुनावों मे कार्यकर्ताओं की निस्वार्थ सक्रियता का बहुत महत्व होता है। लोकसभा से लेकर विधान सभा तक संघ परिवार ने जी जान से सक्रियता दिखाई थी। इन उप चुनावो मे संघ परिवार की सक्रियता लगभग नही के बराबर थी। यह निष्क्रियता क्यो थी यह शोध का विषय है। यह निष्क्रियता मोदी सरकार के विरूद्ध संध परिवार की नाराजगी भी संभव है या योगी सरकार के प्रति भी कोइ बात हो सकती है। यह निष्क्रियता अति आत्म विश्वास के कारण भी संभव है। मेरी जानकारी के अनुसार योगी जी मोदी जी तथा संध परिवार ने अपने अपने आधार पर इस तरह के आकलन कर लिये थे कि विपक्ष अब समाप्त हो रहा है और अब अलग अलग शक्ति संतुलन बनाने का समय आ गया है। इन सबकी गुप्त चर्चाए भी शुरू हो गई थी। इन गुप्त चर्चाओ के कारण भी कुछ समीकरण गडबड हो सकते है। जो भी हो किन्तु मुझे लगता है कि यह हार मोदी योगी और संघ परिवार के बीच किसी गडबड तालमेल का परिणाम अधिक दिखती है और बढे आत्मविश्वास की कम। इतना अवश्य है कि यह हार दो हजार उन्नीस मे मोदी जी को जीतने मे मददगार भी हो सकती है क्योकि यह एक अदृश्य भय के रूप मे बदल कर आपसी तालमेल और ठीक भी कर सकती है।

सामयिकी

दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल को मैं निकट से जानता हूॅ । उसमे ईमानदारी, भावुकता तथा हिम्मत का मुझे हमेशा विश्वास रहा है। उन्हे मैं बहुत परिश्रमी और सफल योजनाकार मानता रहा हूॅ। साथ ही मेरी मान्यता रही है कि उनमें कुटनीति की समझ बिल्कुल नहीं है। राजनीति के लिये जितनी कुटनीति आवश्यक होती है उसका भी उनमे अभाव है। इस तरह वे एक सफल आंदोलनकारी तो हो सकते है, किन्तु सफल प्रशासक नहीं।

ऐसा व्यक्ति यदि उच्च महत्वाकांक्षा की बीमारी से ग्रसित हो जाये तो उसका पूरा जीवन ही संकट पूर्ण हो सकता है। अरविन्द केजरीवाल को जिस तरह प्रधानमंत्री बनने का रोग लगा उसने उनकी रात की नींद ही छीन ली। बिना राजनैतिक समझ बूझ वाला व्यक्ति यदि एकाएक ऐसे दिवा स्वप्न देखने लगे तो परिणाम तो ऐसे होगे ही। बिना सोचे समझे अन्य राजनेताओं की नकल करते हुए अरविन्द जी ने अन्य लोगो पर गंभीर आरोप लगाने शुरू कर दिये। वे भूल गये कि सभी नेता अंदर–अंदर एक दूसरे

से मिले रहते है और सारा टकराव दिखावटी रहता है। परिणाम हुआ कि उन्हें राजनैतिक आत्महत्या का सहारा लेना पडा। जैसे–जैसे शब्दों का वे प्रयोग करते थे, वे अहंकार तथा इतने मूर्खतापूर्ण थे कि हम सबको आश्चर्य होता था। अरविन्द केजरीवाल ने माफी मांगकर जो मार्ग अपनाया वह पर्याप्त नहीं है। जब तक उनका राजनैतिक सत्ता का नशा नहीं छूटता तब तक उन्हें सुख चैन नहीं मिल सकता। यदि उन्होंने सत्ता के स्वप्न देखने बंद नहीं किये तो वे प्रधान मंत्री की जगह चपरासी के लायक भी नहीं रहेंगे। पांच वर्ष में ही इतना बडा बदलाव कोई सामान्य घटना नहीं कही जा सकती। कहां तो अन्ना के साथ मिलकर भारत की राजनैतिक व्यवस्था में भूचाल पैदा करने वाले अरविन्द और कहां राजनीति की गंदी नालियों में भ्रष्ट लोगों के संरक्षण देता हुआ अरविन्द। सब देखकर कष्ट और दया का भाव आता है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न–असीम और समान स्वतंत्रता का क्या मतलब है ।

उत्तर– मै मौलिक अधिकारो पर चर्चा करते समय असीम समान स्वतंत्रता शब्द का प्रयोग करता हूॅ। सामान्यतया असीम और समान विरोधाभाषी है। मेरा आशय यह रहता है कि किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता की कोई सीमा न कोई अन्य व्यक्ति बना सकता है न सरकार और न ही समाज । इसलिये यह असीम स्वतंत्रता है। दूसरी ओर आपकी स्वतंत्रता की तरह ही प्रत्येक व्यक्ति को उतनी ही स्वतंत्रता होने से वह समान भी है। इसका अर्थ हुआ कि आपकी स्वतंत्रता की सीमा वही तक है जहां से किसी अन्य की सीमा शुरू होती है। यदि दो व्यक्तियो की सीमाए आपस मे टकराती है तब राजनैतिक सामाजिक व्यवस्था सीमाओ का निपटारा करती है। इस तरह हर व्यक्ति की सीमा भी है। फिर भी मै असीम शब्द लिखता हूॅ। क्योकि असीम समान के अतिरिक्त मुझे कोई उपयुक्त शब्द नही मिलता।